योग-साधन-माला वर्ष २ पुष्प ७—

ब्रह्मानन्द

लेखक और प्रकाशक—

श्री स्वामी अभयानन्द सरस्वती,
योगमण्डल 'गुरुकुल' काशी।

श्रावण १९८० वै०] [मूल्य ।-) आ०

ब्रह्मानन्द की विषय सूची

सं०	विषय	पृष्ठ
१	गुरुमन्त्र	१
२	आनन्दों का विवरण	२
३	आनन्द स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान का फल ...	३
४	नास्तिकों के बचन	४
५	आस्तिकों के बचन	"
६	सन्तोषी जनों के आनन्द	"
७	परमात्मा रा प्रेम की पराकाष्ठा	५
८	ब्रह्म प्राप्ति के उपाय	६
९	मुमुक्षु की सप्तपदी	८
१०	ब्रह्म दर्शन	९
११	ब्रह्मानन्द की अवस्था	१०
१२	ब्रह्मस्तुति	"
१३	उपासकों के कष्ट सहने का परं लाभ ...	११
१४	भजनानन्द	१२
१५	ममता का त्याग	१९
१६	महाराज प्रेम जिज्ञासु का उपाख्यान	"

* ओ३म् *

ब्रह्मानन्द

गुरुमंत्र

ओ३म् । भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गो-
देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥

यजु० अ० ३६ मं० ॥

* दोहा *

गायत्री गुरुमंत्र का, करो मानसिक जाप ।
अर्थ विचारो हृदय में, होय बुद्धि निष्पाप ॥

* ठुमरी *

(ध्रुव)= जो ' ओ३म् ' भजै, नित ध्यान धरै ।
भगवान उसै, सुखदान करै ॥

(१) 'भूः, जो जीवित, संसार करै ।
प्राणों से प्रिय, जग प्यार करै ॥
जन को दुख, सागर पार करै ।
सुख वृष्टि भुवः,' सुख खान करै ॥ १ ॥

(२) जो आनन्दमय, 'स्वः' व्यापक है ।
आधार वही, जगधारक है ॥
वह सर्व नियामक, पालक है ।
सुख धामो सुख, सन्दान करै ॥ २ ॥

(३) उसको 'तत्' जो, 'सवितुः' सब को।
उत्पादक औ, बलदा भव को॥
अति ग्राह्य 'वरेण्यम्', मानव को।
दे ज्ञान प्रभू, अज्ञान हरै॥ ३॥

(४) विज्ञान स्वरूप, पवित्र सदा।
'भर्गः' 'देवस्य', गुरु सुखदा॥
ध्याते हम 'धीमहि' ध्रुव बुधिदा।
बुध बुद्धि 'धियः' अवधान करै॥ ४॥

(५) 'यः' जो सविता, उत्पात हरै।
'नः' हमरी मति, अवदात करै॥
धी दान 'प्रचोदयात्', करै।
कृपया जगदीश, सुजान करै॥ ५॥

१ सन्दान = दान देना, २ ग्राह्य = जो ग्रहण करने योग्य है, बुध = बोध स्वरूप, ४ अवधान = सावधान, ५ अवदात = शुद्ध, ६ धी = बुद्धि।

आनन्दों का विवरण

बृहदारण्यक और तैत्तिरीय उपनिषद् में जहां आनन्दों का सातिशय कथन किया गया है। लिखा है कि मनुष्य का आनन्द यह है कि वह युवा हो, बलिष्ठ हो और अधीत सास्त्र भी हो, इतनाही नहीं किन्तु पुष्कल धनवाला भी हो, यह साधारण मनुष्य के आनन्द की सीमा है, इससे शतगुना आनन्द गन्धर्व को होता है जो परमात्मा सम्बन्धी सामवेदादि के गायन को अनन्य भक्ति से गाता है, जो वेद का यथार्थ वेत्ता किसी कामानल से दग्ध न हो उसको भी वैसाही आनन्द होता है, जो ब्रह्मवेत्ता होकर परमात्मा का गायन करता है उसका नाम "देव गन्धर्व" है, उनसे सौगुना आनन्द उनको होता है जो वैदिक कर्म करने में निपुण हैं, उनसे सौगुना आनन्द उनको है जो पूर्व प्रारब्ध कर्मों से ही देव भाव को

प्राप्त होकर ब्रह्म विद्यादि दिव्य गुणों को प्राप्त हुए हैं और उनसे सौगुना आनन्द उनको अधिक है जिनका देव भाव ऐहिक कर्मजन्य तथा प्रारब्ध कर्मजन्य नहीं किन्तु जो चिरकालसे ही स्व स्वभाव से शुद्ध हैं, उनसे सौगुना आनन्द ऐसे देवों के अधिपति " इन्द्र " का है, " इन्द्र " यहां किसी अलौकिक देव विशेष का नाम नहीं किन्तु दिव्य गुणोंवाले पुरुषों के राजाका नाम "इन्द्र" है, उससे सौगुना आनन्द बृहस्पति नाम विद्वान को, उससे सौगुना आनन्द चक्रवर्ति राजा को और उससे सौगुना अधिक आनन्द ब्रह्म को होता है।

'भाव'—यह है कि साधारण मनुष्य से लेकर प्रजापति पर्यन्त यहां सब आनन्दों को सातिशय निरूपण किया गया है अर्थात् एक से दूसरे का आनद कहीं बढ़कर और यह अतिशयता ब्रह्म में जाकर समाप्त होती है, कामना रहित वेदवेत्ता का आनन्द जो ब्रह्मा के आनन्द समान कथन किया है वह 'ब्रह्मानंद' है, या यों कहो कि कामना रहित पुरुष ब्रह्मानंद का उपभोग करता है, वास्तव बात यह है कि सर्वोपरि आनंद एकमात्र ब्रह्म का है और सब उसी के आनंद से आनदित होते हैं।

आनन्द स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान का फल

जो अधिकारी पुरुष देह से लेकर सूर्य पर्यन्त सब लोक लोकान्तरों में परमात्मा को एक समझता है यह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों का (जिनका वर्णन योगमण्डल गुरुकुल काशी द्वारा प्रकाशित " आत्मयोग " नामी पुस्तक में किया गया है) इनसे परमात्मा को पृथक समझ कर आनंदमय ब्रह्म को प्राप्त होता है, या यों कहो कि परमात्मा का एकत्वदर्शी नाना देववाद तथा उसके नाना भेदों में न फसकर परमात्मा को सर्वत्र परिपूर्ण एकरस देखता है।

नास्तिकों के वचन

जो धन के प्रमाद से मूढ़ हैं जिनके ध्यान में यही लोक है परलोक कुछ भी नहीं और देहत्याग के अनन्तर जिनके ध्यान में आत्मा का अस्तित्व नहीं आता वह बारम्बार मृत्यु की पास में फसते हैं. क्योंकि महामाया के प्रभाव से उनके यही विचार बने रहते हैं:—

सवैया

जहँ खानन पानन ती सुख है, यह मोक्ष कहो कत आवत कामा।
परलोक नहीं सुख होय कहां, उलटे सुतनार तजावत बामा ॥
जगवंचन के हित च्योत रची, जन धूरत वेद धरे तिहि नामा।
श्रद्धा सुन यों पथ वेद तजे, सुपर्खंडिन के बस ह्वैगई बामा ॥

आस्तिकों के वचन

भव भोग विलास रहें न सदा, इस जीवन आरुणि तुच्छ निहारा।
गण इन्द्रिय दाह करे विषयान, लजाय पड़े भवसागर धारा ॥
वस्तु विवेक करें जनजो, तिनके मन में यह होत बिचारा।
जब भौन तजे सुखमौन भजे, शठ सूझत तोहिं तभी जगसारा ॥

इस प्रकार वस्तु विचार के भाव उपनिषद् में बलपूर्वक भरे हैं। जिनके अनुष्ठान से पुरुष महामोह के फंदे में कदापि नहीं फंसता, क्योंकि वह ऐसाही वस्तु विचार करता है। यथाः—

"जो परमात्मा, प्रकृति तथा जीवों के मध्य नित्यों में नित्य और चेतनों में चेतन है ऐसा समझता है उसी को आत्मस्थ जानने से शान्ति होती है" अन्यथा नहीं।

सन्तोषीजनों के आनन्द

सवैया।

जो फल थे तन मानव के, वह लाभ किये हमने अब सारे।
आनन्दधाम सुधानिधि को, लख दूर भये भव के भय सारे ॥

क्षुद्र नदी सम मेट दिया वपु, ब्रह्म पयोनिधि माह पधारे।
प्रत्यक् रूप भई समता, धन धाम धरा अब नाह हमारे॥
सुत के हित प्यार करे जग में, कहु कौन करे धन के हित प्यारा।
हित नार न प्यार करे जग में, इम ढूंढ लिया हमने भव सारा॥
हित आतम प्यार करें सबही, यह आतम है सबसे अतिप्यारा।
वह आनन्द रूप पयोनिधि है, उसके बिन और नहीं काउ प्यारा॥
वसु पूरण हो वसुधा सगरी, पुन और पदारथ हों सुखकारी।
गजगामिनि भामिनि हो मधुरी, मुखकी छवि चन्द्रकलाजिन टारी॥
शुभ व्यंजन होहि अहार घन, जिनके रससे तन पुष्टि अपारी।
सुख आतम नाह लहे जब लों, तब होहि हलाहल के सम चारी॥
यह आनन्द नाह मिल धन से, और नाह मिले वह त्याग कमाये।
तन तीरथ त्याग करे नमिले नमिले—हरि के पुर देह तपाये॥
घन कानन घोर निवास करे—अथवा गिरि कन्दर माह बसाये।
रति आतम एक सुसाधन है, पर जो रति नाह सुनाह तपाये॥

इसी भाव का गीता में इस प्रकार वर्णन किया है, कि:—

यस्त्वात्म रति रेवस्या दात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्ठस्तस्य कार्य्यं न विद्यते॥
गी॥ ३। १७॥

जो पुरुष उक्त आत्मदेव की प्रीति में रत है और एकमात्र उसकी तृप्ति से तृप्त है उसके लिये मनुष्य जन्म का फल रूप कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता।

यह वह आत्म तत्त्व है जो आत्मदर्शी के लिये दक्षिणोत्तर, पूर्व पश्चिम तथा नीचे ऊपर सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, इस आनन्द सागर में निमग्न हुआ आत्मदर्शी अमृतभाव को प्राप्त होता है।

परमात्मा मे प्रेमकी पराकाष्टा

जब मनुष्य में परमात्मा की ओर प्रेम इतना उच्च

अवस्था में पहुँचता है, कि दुनिया के सारे प्रेम इकठ्ठे होकर उसी एक परमात्मा की ओर लग जाते हैं, तब भी मनुष्य अपना सब कुछ उसी परमात्मा को कहने लगता है। इसी प्रेम में मग्न पुरुष का यह बचन है:—

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्चसखा त्वमेव त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव" ॥

"सवैया"

मात तुही गुरु तात तुही मित्र भ्रात तुही धन धान्य भंडारो।
ईश तूही जगदीश तूही मम शीश तूही प्रभु राखन हारो॥
राव तुही उमराव तूही मम भाव तूही मम नयन को तारो।
सार तूही कर्त्तार तूही घरबार तूही परिवार हमारो॥

प्रेमी जन यदि अपने प्रेम पात्र को पाकर सब कुछ न भूल जाय, तो वह प्रेमी नहीं हो सकता। प्रेमी वही है, जो अपने प्रेमास्पद की चाह में हो सब कुछ भुला दे और उसको पाकर तो अपने आपे से भी बेखबर हो जाये।

ब्रह्मप्राप्ति के उपाय

वेदान्त शास्त्र में ब्रह्म प्राप्ति के चार साधन बतलाये हैं। (१) श्रवण = सुनना, (२) मनन = मनसे विचार करना, (३) निदिध्यासन = प्राप्ति का उपाय वा कर्म, (४) साक्षात्कार = दर्शन। चारों साधनों को निम्न प्रकार छंद में देखिये।

"हरिगीतिका छंद"

हैं दूध घी जैसे मिले त्यों आत्मा परमात्मा।
इस मर्म का ज्ञाता सदा हो अभय रत धर्मात्मा॥

प्रत्यक्षवादी नास्तिक है पूछता प्रभु का पता।
दे दूध कर में आस्तिक कहता है घी इसमें बता ॥ १ ॥
सब गुप्त घृत प्रत्यक्ष करने के सुसाधन दक्षनर।
सद् युक्ति से संयुक्त कर घी वह खिलाता शीघ्रतर ॥
प्रिय वत्स ऐसे चित्त धर जैसे मिले घृत तुल्य हर।
गुरु को सगभ गो कष्ट हर गुरु मुख समझ थन सौम्यवर॥२॥
हो दोग्धा श्रद्धालु सद् जिज्ञासु जापक शुद्ध चित्।
फिर कान केले पात्र में दुहु दूध हरि गुण वेद वित् ॥
मन रूप हाँडी में पका धर देह चूल्हे पर सुचित।
इंधन विषय का फूँकना योगाग्नि में जानो उचित ॥ ३ ॥
समुचित व्यजन अभ्यास से है दीप्त करना आगका।
जलकर विषय पक जाय पय जल वायु फिर वैरागका॥
फिर चित्त मथनी में जमा जामन दे गुरु अनुराग का।
पय ज्ञान जब जम हो दही बट रज्जु त्रय गुण भाग का ॥४॥
कयोली पकड़ दृढ़ धारणा की गाड़ खम्बा ध्यान का।
फिर ले रई सुसमाधिकी मन्थन करो दधि ज्ञानका ॥
ब्रह्मोपमा मसका मिले हो पथ सरल संयोग का।
सिद्धान्त, साधन है यही वेदान्त दर्शन, योग का ॥ ५ ॥

इस छन्द में ऊपर कहे चारों साधन आगये। (१) ब्रह्म के गुणों का श्रवण श्रोत्र द्वारा किया है। जिनमें कानों को दूध दोहने का पात्र और ईश्वर गुणों को दूध से उपमा दी गई है। (२) मन की हाँडी में दूध पकाना मनन है। अर्थात् कानों से सुने हुए ज्ञान को मन में मनन (विचार) करके परिपक्व करना चाहिए। (३) समाधिकी रई से दृढ़ ज्ञान रूपी दही को मथन करना निदिध्यासन है। (४) मसका रूप ब्रह्म को अनुभव करना साक्षात्कार है।

मुमुक्षु की सप्तपदी

* छन्द *

(१)

था मुग्ध रमणी रूप पर, अत्यन्त विषया सक्त था।
परिहास हास-विलास में, प्रणयों हृदय अनुरक्त था॥
जब एक पद आगे बढ़ा, 'काम' मन से धो गया।
तो व्यक्ति गत सौन्दर्य क्या, संसार सुन्दर हो गया॥

(२)

सुख में हुई अत्यल्प यदि बाधा, लगी तन काँपने।
हो लाल, मल कर कर, रगड़ने रद, लगा उर हाँपने॥
पद दूसरा ज्योंही धरा, त्योरी न वह बदली रही।
रिपु 'क्रोध' हटने के हृदय से, शान्ति मय देखी मही॥

(३)

सम्पत्ति नाना भाँति की, मैंने कमाई चाव से।
तोभी न छूटी वासना, बढ़ती गई मृदु भाव से॥
रक्खा चरण जब तीसरा, नहिं'लोभ' से नातारहा।
ममता मिटी, नि:सीम अब, सन्तोष-धन भाता अहा॥

(४)

कांता, सुता, सुत, धाम, धन, परिवार प्यारा जानकर।
लोलुप रहा उनमें सदा, सर्वस्व अपना मान कर॥
वैराग्य के चौथे चरण में, 'मोह' का परदा हटा।
चिद्भानु—किरणों से घटी, अज्ञान तम का घन-घटा॥

(५)

सर्वज्ञ हूँ, बलवान हूँ, गुणवान, सज्जन, मान्य हूँ।
थी भावना, संसार में, सर्वाग्रगण्य वदान्य हूं॥
'मद' पाँचवें पद पर मिटा, अल्पज्ञ जाना जीव है।
अभिमान तज देना, परम पुरुषार्थता की नींव है॥

(६)

मुझसे न कोई श्रेष्ठ हो, चिन्ता बनी थी चित्त में।
उत्कर्ष नहिं सहता किसी का, ज्ञान बल* वा वित्त में॥
'मत्सर' मराधरते छठापद, मित्र-रिपु सम हो गये।
वसुधा-कुटुम्बी बन गया, दुर्भाव मन के खो गये॥

(७)

आगे निकल आये, छहो रिपु दीन पीछे रह गये।
निर्द्वन्द, बन्धन रहित, शुचि, अद्वैत-हृद में बह गये॥
सप्तम चरण धरते, मिली वह मुक्ति-त्रिभुवन सुंदरी।
सब भर भरापुर है आंनंद! हरि माया हरी॥

ब्रह्मदर्शन

ब्रह्मदर्शी जब आँख खोलकर बाहर की ओर देखता है तो इस ब्रह्माण्ड में बसा हुआ उस ब्रह्म को देखता है, वह देखता है "ब्रह्म ही यह अमर सामने है, ब्रह्म पीछे है, ब्रह्म दाईं ओर है, ब्रह्म बाईं ओर है।" नीचे ऊपर फैला हुआ मानो यह सुन्दर सारा ब्रह्म ही है। (मुण्डक २। २। ११) यहां वह उस ब्रह्म को ब्रह्माण्ड के साथ देखता है, पर जब वह इसमें मग्न हो जाता है, तो आत्मा में उसके केवल स्वरूप को देखता है।

"जब योग युक्त होकर दीप के सदृश आत्म तत्व से ब्रह्म तत्व को देख ले, जो अजन्मा, अचल, सब तत्त्वों से शुद्ध है। तब उस देव को जान कर सब फांसों से छूट जाता है। (श्वेता० ३० २। १५)॥ अब उसको प्रकृति नहीं जकड़ सकती, क्योंकि वह इसके बन्धनों से परे पहुंच गया है, इसीलिये अब वह "निरञ्जनः परमंसाम्यमुपैति" (मुण्डक० ३।१।३) ब्रह्म के परम समता को प्राप्त हुआ है। अब प्रकृति उसके सामने वही हकीकत रखती है, जो इसकी ब्रह्म के सामने है। इसी लिये कहा है कि "ब्रह्म वेद ब्रह्मैवभवति" (मुण्डक ३।२।९)

जो पुरुष उस परब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है अर्थात् वह ब्रह्म के धर्मों को धारण करके ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नाम रूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्" (मुण्डक० ३।२।८) अर्थात् जिस प्रकार नदियां अपने नामरूप को धारण करके बहती हुई समुद्र में जाकर लीन हो जाती हैं और वहां अपने नामरूप को छोड़ कर समुद्र ही कहाता है इसी प्रकार मुमुक्षु पुरुष नाम रूप से रहित हुआ उस प्रकाश स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है।

ब्रह्मानन्द की अवस्था

* कवित्त *

" सच्चाविश्व नहीं, नहीं गृह कहीं, है मृत्यु सच्ची नहीं। कुम्भीपाक नहीं कहीं यम नहीं, दुष्कर्म कोई नहीं॥ आधि व्याधि नहीं, न मूर्ख गति है, जञ्जाल सीमा नहीं। ब्रह्मानन्द निमग्न चित्त जब हो संसार माया नहीं॥"

ब्रह्मस्तुति

नमस्ते सतेते जगत् कारणाय, नमस्ते चिते सर्व लोका श्रयाय।
नमोऽद्वैत तत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥१॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकंवरेण्यम्, त्वमेकं जगद्धारकंस्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥२॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां, गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकं, परेशां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥३॥
वयंत्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो, वयंत्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं, भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥४॥
विदुर्यन्नचित्तेन्द्रियाणीन्द्रियेशं, विजानाति यस्तानि नित्यंनियन्ता।
जगत्साक्षिणं व्यापकं विश्ववन्द्य, चिदानन्द रूपं तमीशं प्रपद्ये॥५॥

अणोरप्यणीयान्महद्भ्यो महीयान्, रविन्दुग्रहैर्योभगोलादिकर्त्ता।
यईशोहिस्टष्ट्याादि मध्यान्तसंस्थः, चिदानन्दरूपंतमीशंप्रपद्ये ॥६॥
यतो जायते विश्वमेतत् समस्तं,स्थितं यत्र यस्मिंल्लयंयाति काले ।
अनादिं विभुं चादिमध्यान्त शून्यं, चिदानन्दरूपं तमीशं प्रपद्ये ॥७॥
वशे यस्य विश्वं समस्त सदास्ते,यदा भासतो भातियद्वै विचित्रम्।
न जनन्तियं तत्त्वतो योगिनोऽपि,चिदानन्द रूपं तमीशं प्रपद्ये ॥८॥

भजन

नमो सृष्टिकर्त्ता नमो हे विधाता, नमो सच्चिदानंद आनंददाता।
नमोदीनोंकेदुःखहरलेनेवाले,नमोविश्वभर्त्तानिमोजनकेत्राता॥१॥
करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्माको.यही मांगता नित्य सायं व प्राता ।
मुझे तीन तापों में अब ना तपाओ,मैं तंग हो रहा गम उठाता२॥२॥
तुम्हारेसिवाकौनरक्षकहै मेरा,जगत्स्वारथीहै न कोई मित्रभ्राता।
भंवरवीचनैयापड़ीनाथमेरी,पड़ा काल के चक्र में चक्रखाता॥३॥
दयासिंधुहेदीनबन्धु दयाकर, न क्योंशीघ्रसुखरूपरस्तादिखाता।
तेरेदरपैआके मैंव्याकुलपड़ाहूँ,नक्योंइसका दुःखदर्दसारेमिटाता४

उपासकों के कष्ट सहन करने का परलाभ

बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय ५ ब्राह्मण १२ में लिखा है:—"एतद्वै परमं तपो यद् व्याहितस्तप्यते । परम ँ हैवलोकं जयति य एवं वेद । ००० ॥ १ ॥

यह परम (सब से बढ़कर) तप है, जो रोगी होकर तपता है (दुःख भोगता है) जो यह जानता है, वह परम लोक को जीतता है । अर्थात् उपासक बीमारी को तप समझे न निन्दे, न निराश हो । और उसके दुःख को ऐसा ही ध्यान करे जैसा कि तप करने में दुःख होता है । जो ऐसा ध्यान करता है, वह इस दुःख से फल लाभ करता है । जो उसको बड़ा भारी तप करने में दुःख उठाने का होता है । यह परमतप है, जो मरे हुए को जंगल की ओर ले जाते हैं । (यह

तप उस तप के बराबर है, जो ग्राम को छोड़ कर जंगल में रहना है) जो यह जानता है, वह परम लोक को जीतता है। वह परम तप है, जो मरे हुए को आग पर रखते हैं। (यह उस तप के बराबर है, जो आग में पविष्ठ होना है)। जो यह जानता है, वह परम लोक का जीतता है॥ १॥

ओ३म्

भजनानन्द

१ तोटक छन्द

भजओं भजओं भजओं संततम्। यह जीवन है अतिअल्पतरम्॥१॥
यह मंत्र सुदुर्लभ वेद कृतम्। युग चारहु म ऋषि देव धृतम्॥२॥
सब मंत्र शिरोमणि जाप वरम्। मन शुद्ध करं भव भीतिहरम्॥३॥
श्रुतितंत्र पुराण समस्त कहैं। बिनओं सब मंत्र अशुद्ध रहैं॥४॥
यह ईश्वर वाचक नाम नरो। सब में यह श्रेष्ठ विचार करो॥५॥
गिरि गह्वर में सरिता तट में। बन में जन में सबही पल में॥६॥
ऋषि योगियती नर कोविद जो। करते जप ओं श्रुति पूजित जो॥७॥
अब त्याग करो मन संशय को। गहिलेहु सुमंगल ओं पद को॥८॥
सुख में दुख में प्रभु को भजियो। न कदापि उस मन से तजियो॥९॥
मुख मोड़हुना करुणा करसे। प्रिय बान्धव मित्र वही सबसे॥१०॥
गतिमुक्ति वही धनधान्य वही। पितु मातु वही गुरुदेव वही॥११॥
प्रभु देहि सुबुद्ध प्रदीप वरम्। मन पाप कटे विनशे तिमिरम्॥१२॥
अवलोकि सको महिमा सुखदम्। दुखमोचन मंगल शान्तिप्रदम्॥१३॥
करुणा कर तू हम पापी सदा। दृग पाति करो प्रभु हो सुखदा॥१४॥
शरणागत याचत रक्ष विभो। जयओं जयओं जयनाथ प्रभो॥१५॥
शिवशंकर शंकर को शरणम्। मनसे सुमिरे दुख के हरणम्॥१६॥

२ प्रभाती

अब तो प्रभात भई सन्ध्या कर भाई।
चकवी आनन्द भई कमलन अति मुक्त भई॥
चरने सब धेनु गई प्रकटी अरुणाई ॥अब०॥
पक्षिन मिलकियो शोर उपवन बन चहूँ ओर।
प्रोषित पति भई चकोर कुमुदिन कुम्हलाई ॥
पथिक चलत शब्द होत सूरज कि प्रकट ज्योति।
फीको भयो शशि उद्दोत पढ़े बट समुदाई ॥
पवन बहत मन्द २ ,शीतल है अति सुगंध।
हवन यज्ञ कर प्रबन्ध पाठक हरषाई ॥ अब० ॥

३ भजन

मन अब सायं सन्ध्या करो रे ॥ टेक ॥
सूर्य्य अस्त भयो भौंर कमल बीच, खग बोलत तरु पररे।
धेनु आई गृह धूल उड़त है तिमिर छायो घर २ रे ॥ १ ॥
दीपक बारो शुद्ध सनेह सो, चकवी चली है उधर रे।
प्राणायाम कर गायत्री जप ओ३म् नाम चित धर रे ॥ २ ॥
हवन यज्ञ कर स्वाहा २ हो ध्वनि जिधर तिधर रे।
दिन तेरा सब झगड़ों में बीता पाठक प्रभु को सुमर रे ॥ ३ ॥

४ भजन

आवो जी करें नित्य संध्या हवन ॥ टेक ॥
सन्ध्या से हो अन्दर शुद्धि अहंकार मन चित और बुद्धि।
सबको मिलाकर अन्तःकरण ॥ आओजी० ॥
एक प्रणव से ध्यान लगावो, प्राणायाम कर मन ठहराओ।
तब होवे सब इन्द्रिय दमन ॥ आ० ॥
इसके बाद फिर हवन रचाओ प्राणीमात्र को सुख पहुँचाओ।

शुद्ध होवे जल अन्न पवन ॥ आवो जी० ॥
पञ्चयज्ञ जो नित्य कर्म है प्राणी मात्र की रक्षा धर्म है।
धर्म करें नित चारो वरण ॥ आओ जी० ॥
बासुदेव कर भक्ति उसकी महिमा जग में दीखे जिसकी।
उस ही प्रभु की आओ शरण ॥ आओ जी ॥

५ सन्ध्यार्थ शिखरिणी

प्रभू शन्नोदेवी सकल जग ज्योतिःकरत जो।
तुम्हीं सर्वव्यापी परमपद दाता जगत् को ॥
मनिच्छा सिद्धी हों जनहि सुखदाता महत् हो।
महाशान्ती रूपी हमहिं पर वर्षा नित करो ॥ १ ॥
प्रभू जी वाणी को महत् यश दो औ बलभि दो।
यही दो प्राणों को चखन श्रुति नाभिःहृदय को ॥
यही दो ग्रीवा को भुजन शिर को भी सुखि करो।
भली भांती जिससे जगत् कर कामों मह लगों ॥ २ ॥
तु प्राणों से प्यारा करहु शुचि मोरा शिर प्रभो।
विनाशी दुःखों के करहु शुचि मोरी चखन जो ॥
सुखों के हो दाता करहु शुचि ग्रीवा जनन को।
प्रभू सर्वेश्वर हो करहु शुचि मोरा हृदय को ॥
पिता त्राता धाता करहु शुचि नाभिःमम तुही।
तपानेवाले हो करहु शुचि मोरे पद यही ॥
प्रभू सद्रूपी हो करहु पुनि मोरा शिर शुचिः।
महत् सर्वव्यापी करहु शुचि इन्द्रियगण रुचि ॥ ३ ॥
तु प्राणों से प्यारा कहहि श्रुति ओंभूः इसलिये।
विनाशी दुःखों के सुखद विभुवः स्वः वसहिये ॥
महान् सर्वाधारा जगत्पितु यासों यह जना।
तपानेवाले हो अमृप तप सत्यं इमि भना ॥ ४ ॥
प्रभू विज्ञानी की प्रकृति श्रुति सामर्थहि बने।

महाराज्ञी पृथ्वी समुद्र नभ आपः घटि बिने ॥
प्रकाशी धाता में रवि शशि प्रकाशी पुनि बना।
यथा पूर्व कल्पं सबहि नभ लोकों को रचा ॥ ५ ॥
मुखाग्रे विज्ञानी नृपति रवि रूपाधिपति हो।
श्रुति के बाणों से किरन सन अज्ञान तमसों ॥
करो मेरी रक्षा करहु वश में दुष्ट जनको।
नमस्ते हो तोको गुणहिं तव जेते सबन को ॥
दिशा दाईं राजा विभव युक्त तिर्छे पथिक सों।
सदा बाणों द्वारा महत् ऋषि रूपी विदित जो ॥
करो मेरी रक्षा करहु वश पापी जनन को।
नमस्ते हो तोको गुणहिं तव जेते सबन को ॥
दिशा पृष्ठे राजा जगत्पति सर्वोत्तम यदा।
दवा के बाणों से गरलमय सर्पों सन सदा ॥
करो मेरी रक्षा करहु वश पापी जनन को।
नमस्ते हो तोको गुणहिं तव जेते सबन को ॥
प्रभू शान्तिः रूपी जगत्पति बाईं दिश मुदा।
तडित् के बाणों से पवन दुखदाई हनसदा ॥
करो मेरी रक्षा करहु वश पापी जनन को।
नमस्ते हो तोको गुणहिं तव जेते सबन को ॥
अहो सर्वव्यापी जगत्पति पृथ्वी दिश विभू।
सदा तू सर्पों से वनसपति बाणों सन प्रभू ॥
करो मेरी रक्षा करहु वश पापी जनन को।
नमस्ते हो तोको गुणहिं तव जेते सबन को ॥
महान् सर्वाधारा उपरि दिश में भी रम रहा।
तु वर्षा बाणों से खुजलि सन व्याधी गमन सों ॥
करो मेरी रक्षा करहु वश पापी जनन को।
नमस्ते हो तोको गुणहिं तव जेते सबन को ॥ ६ ॥
प्रकाशी देवों में अचर चर आत्मा मुदवरे।

सदा से है वोही अबुध तम से भी अति परे ॥
उसे ही श्रद्धा से लखित रहुं मैं ज्ञान चख सों ।
तुम्ही हो सर्वोत्तम मिलहु प्रभू मोसे विमुख सों ॥
श्रुति जो वेदों की किरन लखि सृष्टी नियम सों ।
प्रकाशी सर्वोत्तम विदित रविसो हो सुगम सों ॥
उसी से प्रार्थी हों दरस करिहै विश्व तिहिको ।
सभी देखें विद्या नियम जग जाने सबहि को ॥
महाअद्भुत रूपो स्वयम् परकाशी बलि प्रभू ।
सभीका है प्यारा सुजन गुरु जो है महविभू ॥
प्रकाशी विद्युत् का अचर चर व्यापो जगत् जो ।
वही विद्वानों के हृदय भलि भांति बसिरहो ॥
प्रभू द्रष्टा स्वामी परम हितकारी सुजन के ।
वहो सर्वव्यापी प्रथम रह सृष्टी प्रलय से ॥
दया सों ताहीकी वयस शतलों जीवन मिले ।
सुनें गावें जीवें अधिक जिय ऐसा फिर करें ॥ ७ ॥
प्रकाशी सर्वात्मा सबन सुख दाता जग पिता ।
बचें दुष्कर्मों से ग्रहण करिवेयोग्य सबका ॥
उसे निश्चय करके धरहिं निज आत्मा में सदा ।
हमारी बुद्धिः को तु प्रभु शुभ कामों में लगा ॥ ८ ॥
नमस्ते हो तोको जगत् सुख दाता शिव तुहि ।
नमस्ते होतो अमित मुदधाता जन मही ॥
नमस्ते हो तोको सुभग वर कल्याण करिहो ।
तुही मुक्ती दाता प्रमुद सुख रूपी प्रभु नमो ॥ ९ ॥

६ भजन

प्रभुजी शिव संकल्प करो मन मेरा ॥ टेक ॥
यह मन मेरा अति शीघ्र गामी, भ्रमता फिरे घनेरा ।
रात दिन और स्वप्न जागमें, डालत सांझ सवेरा ॥ १ ॥

ज्योतियों में है ज्योति अद्भुत्, यज्ञों का है बसेरा।
अपूर्व शक्ति प्रजा में व्यापक, कर्म कमाऊं जासे धीरा ॥ २ ॥
प्रज्ञा बुद्धि धृतिः जाके भीतर, ज्योतिः हैं भपूरा।
जाके बिना कोई कर्म न सूझे, ऐसो मना है मेरा ॥ ३ ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान में, जिसने तना बखेरा।
सप्त होता जासे यज्ञ रचावें, सो अमृत मन मेरा ॥ ४ ॥
ऋग्यजु साम पिरोए जिसमें, चक्र नाभि जू परा।
सारा जगत् व्यापक जिसमें, ऐसो मना है मेरा ॥ ५ ॥
हृद स्थान में स्थित होकर, जो कभी न होता जीर्णा।
बन सुसारथि शीघ्रगामी घट, हाँक रहा तन मेरा ॥ ६ ॥
'अभय' कहे सुनो मम प्यारो, ह शुद्ध करन का वेला।
यदि अब चूको फिर पछताओ, होगा शोक घनेरा ॥ ७ ॥

७ भजन

तुही है सनतान तुही है अनूपम।
तू राज्यों का अधिराज सरकार उत्तम ॥ १ ॥
छोटासा कमरा है ब्रह्माण्ड उसका।
जो तेरा शयनधाम दरबार उत्तम ॥ २ ॥
पवन देवता तेरा पंखा कुली है।
वर्षा भरे पानी पनिहार उत्तम ॥ ३ ॥
अँगीठी जगाने पै नोकर है अग्नि।
सूर्य का दीपक जगे द्वार उत्तम ॥ ४ ॥
फुलवारी का फर्श कोमल से कोमल।
बना बेल बूटे का गुलजार उत्तम ॥ ५ ॥
पुष्पावली है लवेंडर की शीशी।
ऋतुराज हैं तेरा मलियार उत्तम ॥६॥
तेरी लाइब्रेरी में पुस्तक मुकद्दस।
मिले सृष्टि के आदि में चार उत्तम ॥ ७ ॥

ऐश्वर्य तेरा अपरिमित है इतना ।
करें किस बुद्धि से विस्तार उत्तम ॥ ८ ॥
अखण्ड एकरस की लगी हमको प्यासा ।
अमीरस पिलाकर करो प्यार उत्तम ॥९॥

८ भजन

जोजन सुक्ख समाधि लहेगा ।
पृथिवी परम पुनीत पलंग पर, सुखके शयन करेगा ।
हरी घास मखमल को बिस्तर, तकिया हाँथ बनेगा ॥ १ ॥
तारे भरे गगन मंडल को तम्बू इव समझेगा ।
जगत् प्रकासक चन्द्र दीपसम, ताहि प्रकाश करेगा ॥ २ ॥
वायु प्रवाह दिशा दशहूको, त्रिविध समीर दुरेगा ।
मनकी वृत्ति सुघर वानता संग, प्रफूलित मन बिहरेगा ॥ ३ ॥
वल्कल वस्त्र और फल भोजन, जल को पान करेगा ।
धन मद मतवारे पुरुषन के, क्यों कटुवाक्य सहेगा ॥ ४ ॥
'अभयानंद' भक्ति प्रभु में ज्यहि सुख शान्ति मिलेगा ।
राज्यादिक प्राकृत सुख जेते, तृणवत् तुर्त तजेगा ॥ ५ ॥

९ सिद्धोद्गार

कुछ नहीं, कुछ में समाया कुछ नहीं ।
कुछ न कुछ का भेद पाया कुछ नहीं ॥
एक रस कुछ है नहीं कुछ दूसरा ।
कुछ नहीं बिगड़ा बनाया कुछ नहीं ॥
कुछ न उलझा कुछ नहीं की जाल में ।
कुछ पड़ा पाया गमाया कुछ नहीं ॥
कुछ गया कुछ और से कुछ और ही ।
जान कर कुछ भी जनाया ? कुछ नहीं ॥
कुछ न मैं, तू कुछ नहीं, कुछ और है ।
कुछ नहीं अपना, पराया कुछ नहीं ॥

निधि मिली जिसको न परमानन्द की।
उस अबुध के हाथ आया कुछ नहीं॥
वह वृथा अनमोल जीवन खो रहा।
धर्म धन जिसने कमाया कुछ नहीं॥
अब निरन्तर मेल "शंकर" से हुआ।
कर सकी अनमेल माया कुछ नहीं॥

* दोहा *

है तो कहो तो है नहीं, नाहीं कहो तो है।
है और ना के बीच में, जो कुछ है सो है॥

ममताका त्याग

परम पूज्य महर्षि पतञ्जलि जी ने, ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिये आपने योग का सारांश चित्त वृत्तियों का एकाग्र करना ही बतलाया है, क्योंकि जब चित्त एकाग्र होजाता है उसमें से ममता निकल जाती है ममता के दूर हो जाने से प्रभु का ध्यान सरल हो जाता है, इसके अनेक उदाहरण हैं। उनमें से एक को उपयोगी जान कर लिखते है।

महाराज प्रेम जिज्ञासु का उपाख्यान

* स्थान आनन्द नगर में प्रेम जिज्ञासु की प्रेमपरिषद् *

ऋतुराज के शासन काल में मध्याह्न के समय तिग्मांशु की तीव्र किरणें अपना पूर्ण प्रकाश दिगन्त में फैला रही हैं। ऐसे सुन हरे समय में धर्म कुल कमल दिवाकर प्रजा वत्सल श्रीमान् प्रेम जिज्ञासु महाराज की न्याय परिषद लगी हुई है। न्याय, धर्म, विद्या सभा के व्यवस्थापक, सञ्चालक, पालक, आमात्य-सचिव, सेनापति तथा अनेक देशों के दूत और प्रजा-वर्ग के प्रतिनिधि उत्तमोत्तम वस्त्राभरण धारण किये हुये अपने २ काम की पुस्तकें वही खाते सामने धरे हुए यथोचित

स्थान पर विराजमान हैं। महाप्रासाद में चित्र विचित्र के आसन बिछ रहे हैं। खसकी टट्टी लग रही है. गुलाब केवड़े के जल का छिड़काव हो रहा है। इन सब सुखमय साधनों के कारण राज समिति स्वर्ग समान दीप्यमान दीखती है इधर धर्म व्यवस्था की चरचा हो रही है कि द्वारपाल आता है।

द्वारपाल—महाराज की जय हो। महामुनि पाराशर पधारे हैं।

राजा—(आमात्य वर्ग से) ऋषिवर को राज सभा में सादर लाओ।

"योग परायण ऋषि शिरोमणि पाराशर का प्रवेश"

राजा—(आगे बढ़ कर) गुरुवर के चरण कमलोंको प्रणाम है।

ऋषि—राजन् कल्याण हो, धर्म, धन, सन्तान की वृद्धि रहे, न्याय, दया भाव द्वारा प्रजा प्रसन्न रहे।

राजा—अर्घ्य पाद्य की यथाविधि विधान क्रिया करके विष्टर बिछाता है और ऋषि को आसनासीन कर विनीत विनय सुनाता है।

ऋषि—राजन् जो इच्छा हो सो कहो यथा सम्भव उसका उत्तर दिया जावेगा।

राजा—संसार के बन्धन में फंस कर चित्त उद्विग्न एवं मन खिन्न रहा करता है भिन्न भिन्न भांति की भव भ्रांति चित्त को चलायमान और मन को दुखी रखती है अतः कृपया चित्त शांति चिदानन्द प्राप्ति का साधन उपदेश कीजिये।

ऋषि—राजन्। सन्तान के समान प्रजा का पालन करो। यथा सम्भव उनके क्लेशों को हरो। दसवां भाग कर लो. जो कर लो प्रजा की रक्षा, शिक्षा में व्यय करो। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, आर्य, दस्यु, गोरे, काले तथा स्वदेशी विदेशी में भेद बुद्धि न रक्खो जीवन में यश कीर्ति और परलोक में अक्षय सुख

के भागी बनो, इसी में सर्व प्रकार कल्याण है। जिस राजा की प्रजा सुखी रहती है वह राजा स्वर्गगामी, प्रजा को दुखी रखने वाला राजा अवश्यमेव नर्कगामी होता है। यथा—

जो नृप राम प्रजा हितकारी। बसे स्वर्ग में रहै सुखारी॥
जासु राज बस प्रजा दुखारी। सो नृप अवशिनरक अधिकारी

और राज्य से बढ़ कर और सुख क्या हो सकता है।

राजा—महाराज यों तो आपका शीतल वचन सत्य ही है। आपके पूर्व पुरुषाओं के सत्योपदेश से अनुशासित होकर हमारे पूर्वज सदा प्रजा पालन में तत्पर रहे। एवम् इस सेवक से भी श्रीगुरुजी महाराज के आशीर्वाद से कोई कार्य प्रजाहित के प्रतिकूल नहीं बन सका। परन्तु इसका फल परलोक में राज प्राप्ति रूप क्षणिक सुख के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः परमानन्दप्राप्ति का उपदेश करें।

ऋषि—जो संसार का सुख त्यागो तो परमार्थ प्राप्त हो। क्योंकि दो नावों का सवार डूब जाता है।

राजा—गुरुजी आप का राजकुमार अभी छोटा है लिख पढ़ कर कुछ बड़ा और चतुर तथा राज्य का भार उठाने के योग्य हो जावे तो उसका विवाह करके राज काज उसको सौंप दूं और स्वयं—ईश्वरोपासना में ध्यान लगाऊँ।

ऋषि—राजन्, हमने कहा था कि राज्य से बढ़ कर और कोई सुख नहीं सो वह तुम को प्राप्त है। परलोक किसने देखा है। इसके अतिरिक्त ईश्वर में आप को सत्य श्रद्धा, अटल विश्वास तथा पूरा प्रेम भी नहीं है। अभी पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा से चित्त उपराम भी नहीं हुआ है। अतः पुत्र तथा प्रजा का न्याय से पालन करो यही बहुत है। आगे को ईश्वर प्राप्ति का नाम न लेना।

कविवचन

ऋषि के इस वाक्य ने बिजली कासा प्रभाव डाला संसार

वासना रूप कूड़ा करकट भस्म हो गया मन में पछताया और संसार सुख त्याग कर ईश्वराधन का दृढ़ संकल्प करके बोला।

राजा-महाराज-मैंने राज पाट पुत्र प्रजा आदि सबको छोड़ा मुझे ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश करें और राज प्रबन्ध भार अपने शिर धरें।

ऋषि—राज काज का बोझ हम ने अपने शिर पर लिया जो कुछ जानते हैं उपदेश भी करेंगे पर राजन् यह तो बताइये कि आप अपने खान पान का क्या प्रबन्ध करेंगे। बिना भोजन ईश भजन नहीं हो सकता।

राजा—मैं राज पुत्र होकर भिक्षा तो मांग नहीं सक्ता वरन् हाथ से परिश्रम कर के निर्वाह कर लूँगा।

ऋषि—क्या काम करोगे।

राजा—घास खोद कर दो रोटी पैदा कर लूँगा।

ऋषि—तुम को घास खोदनी आती है कभी खोदी है?

राजा—घास कभी खोदी तो है नहीं, न खोदनी आती है। पर समय पड़े पर इसे भी कर लूंगा। राजा नल ने विपत्ति काल में तेली की पाट हांकी थी; सत्यब्रती हरिश्चन्द्र ने श्वपच का पानी भर कर अपना समय बिताया तथा धर्म निभाया था मैं भी सब कुछ कष्ट सह लूंगा।

नोट—दुर क्यों जावें वर्तमान शताब्दी में परोपकार के कारण स्वर्गीय लोकमान्य तिलक तथा सत्याग्रही परम तपस्वी महात्मा गाँधी, देशभक्त भारत केशरी लाला लाजपतराय तथा मौलाना हसरत मोहानी प्रभृति अनेक देश भक्तों तथा धर्म वीरों ने जेल में पड़कर अनेक कष्ट सहे; तथा सहस्रों भारत सपूत मशीनगन, बम्ब का शिकार बने कतिपय ने फाँसी पाई पहले समय के लोग तो आत्मिक बल में आज कल के लोगों से कहीं बढ़ कर थे।

ऋषि-राजन् घास खोदने में बड़ा कष्ट होता है जब आप

अभ्यास करने बैठेंगे तो वे कष्ट सामने खड़े हो जावेंगे इसलिये ईश्वरमें ध्यान न जमेगा और कुछ उपाय बतलाइये।

राजा-महाराज लकड़ी तोड़ कर बेच लूंगा इससे पेट पालूंगा।

ऋषि-लकड़ी तोड़ने में घास खोदने से भी अधिक कष्ट है।

राजा-किसी की गठरी ढोकर निर्वाह कर लूंगा।

ऋषि-राजन् यह काम बड़ा कठिन तथा निकृष्ट है।

राजा-तो महाराज जबकि आप मेरे गुरु और शुभचिन्तक और परम पद की महायात्रा के योगाभ्यास द्वारा पथ प्रदर्शक हैं, वहाँ मेरे जीवन यात्रा के लिये योग क्षेम की सामग्री का उपदेश न करेंगे। क्योंकि मेरा सर्वप्रकार का भार महाराज पर निर्भर है।

ऋषि—यह भी हम सब बतावेंगे; परन्तु राजन यह तो बतावे कि आपने सच मुच हमको अपना राज पाट दे दिया।

राजा—हां हां मैंने राज्य श्री गुरुवर के चरण कमलों में समर्पण कर दिया।

ऋषि—मंत्री कोषाध्यक्ष सेनापति आदि राज्य प्रबन्धक गण से। क्यों भाई तुम साक्षी हो कि राजा ने राज्य हमको दे दिया।

मंत्री वर्ग—हाँ महाराज हम साक्षी हैं।

ऋषि—(राजा तथा राजसभासदों) से अब राज किसका?

राजा तथा समस्तसभासद—महाराज आपका।

ऋषि—(राजा से) तो हम आपको जीवन निर्वाह की वृत्ति बताते हैं।

राजा—महाराज की महती कृपा होगी।

ऋषि—राजन् कल से तुम हमारी नोकरी करलो।

राजा—बहुत अच्छा महाराज।

ऋषि-क्या वेतन लोगे?

राजा—आध सेर आटा।

ऋषि—हमने आध सेर आटा, आध पाव बूरा, छटाँक भर घी तथा आध सेर दूध और पाव भर ऋतु के फल आप को नित्य प्रति का वेतन नियत किया।

राजा-महाराज की बड़ी दया है अब उचित सेवा बताइये।

ऋषि—राजन् सेवा यह है कि ठीक दस बजे से चार बजे तक गुरु के सिंहासन पर बैठ कर प्रजा का पालन न्याय तथा राज सेना और राज्यकोष आदि राष्ट्र सम्बन्धी सब काम करने होंगे; जिनको आप अच्छी तरह करना जानते हैं। ठीक चार बजे राज काज समाप्त कर के अपनी नौकरी ले खाओ पीओ। योगाभ्यास करो मौज उड़ाओ। कहो कैसी सरल सेवा है। कैसा निष्काम काम है। जी लगा कर करो वर्ष दिन के पश्चात् हम सब लेखा जोखा आकर जांच लिया करेंगे।

राजा—गुरु की आज्ञा शिरोधार्य है। मन्त्रोपदेश तथा भोजन प्रबन्ध कीजिये।

कवि—गुरुजी राजा को 'ओम्' का जाप योगाभ्यास की युक्ति आत्म भोजन को और वैश्य की दूकान शरीर भोजन को बताते और अपने आश्रम को जाते हैं।

(इति प्रथमाङ्क समाप्तः)

पाठक वृन्द! विचारिये ऋषि राजा से क्या ले गये। कहने को तो राजा से राज लिया, पर वास्तव में राज आप नहीं ले गये वरन राजा को सौंप गये. ले गये तो केवल एक ममता ले गये। अर्थात् राजा के चित्त से यह अभिमान दूर करा गये, कि मैं राजा हूं यह शिक्षा दे गये, कि राजा लोग राज के स्वामी नहीं वरन प्रजा के सेवक हैं। प्रजा की सेवा करते २ ईश्वर के सेवक बन जाते हैं। इसी से मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो जाता है जो मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य है।

प्रिय पाठक वृन्द! हम आपको प्रथमाङ्क में सुना चुके हैं कि

राशर ऋषि राजा प्रेम जिज्ञासु से अस्मिता लेकर सन्तोष देकर राजा से सेवक बना कर चले गये। दूसरे दिन राजा अपने नित्य कर्म योगाभ्यासादि से निवृत्त होकर नित्य की भांति सिंहासन पर बैठा। बैठते ही यह विचार उत्पन्न हुआ, कि कल तक तो मैं राजा था आज नौकर हूं अब से ऐसा काम करुं कि प्रजा के सब लोग मुझ से प्रसन्न रहें कोई शिकायत न करें जिससे गुरूजी अप्रसन्न हों। इस प्रकार राज की सेवा करते २ बहुत काल बीत गया। पुत्र बड़ा हो गया। ऋषि की आज्ञा से राजा ने उसका विवाह भी कर दिया। राजा के निष्काम भाव की ख्याति राजर्षि जनक राज के समान घर २ होने लगी जिससे राजा का नाम निर्मोही प्रसिद्ध हो गया राजा के ब्रह्मज्ञान का प्रभाव-रानी, राजकुमार, राजकुमार की प्यारी बधू, दासी तथा समस्त प्रजा बर्ग पर भी पड़ा जैसा कि कहावत प्रसिद्ध है (यथा राजा तथा प्रजा) अस्तु, पाठको! आप नगर की वायु तथा कलरव कलकल से विकल हो गये होंगे इसलिये चलिए हम आप को ऋषियों की तपोभूमि में ले चलें वहां ऋषियों के अग्निहोत्र से सुगन्धित सौरभ समीर का आस्वादन करावें और पक्षियों के कल निनाद के साथ वेद पाठी ब्रह्मचारियों का सामगान सुनवायें।

तरुण ऋतु राज के यौवन काल में जब योगीश्वर द्विजराज निशानाथ गौतम या (निशासर्व भूतानां सा निशा जागतेमुनिः) की किम्बदन्ति अनुसार प्रकृति पुस्तक का पाठ समाप्त कर उड़गण मनके वाली मुक्त माला द्वारा प्रणव के बाचक त्रिवर्णात्मक एकाक्षर ओंङ्कार के वाच्यार्थ समस्त संसार के सृष्टि, स्थिति, संहार के निमित्त कारण प्रेम परायण, भव भय भंजन, जन मन रञ्जन परब्रह्म परमात्मा को अर्थ भावना में जाग्रण करके थकित हो गया। और तारावली जाजल्व माला को ऊषा बेला की ललित लावण्य लाल थैली में डालकर (भुवन

ज्ञानं सूर्ये संयमात् । चन्द्रे तारा व्यूह ज्ञानम् । ध्रुवे तद्गति ज्ञानम्) वाले गम्भीर शब्दार्णव से सत्यार्थ के प्रकाशमान समुज्वल मोती निकालने के लिये सूत्र त्रयकी त्रिवेणी में निमग्न हुआ अर्थात् चित्त को हृदहर यमुना में धारण कर, सुरसरि रूप ध्येय में ध्यान धर, सरस्वती समाधि साध संयमार्थ, अस्ताचल गुफा में जा घुसा। किम्बा प्रकृति पुत्रों अर्थात् पुष्पित प्रौढ़ पौधों, सरस सुवासित फलों, कलित कलियों कुसुमित कुसुमों ललित दलों, हरित पत्रों, नवांकुरित कोपलों, जर्जरित जड़ों को नैसर्गिक सरस स्वरस प्रदान कर। और प्राकृति प्रकृति तथा विषय ग्राहिणी बुद्धि वाले अमर अपत्यों अर्थात् सारस, सर्प, सिंह, दादुर, मोर, चातक चकोर, करिवर कूकर, मत्स्य, शूकर, भृङ्ग, पतंग आदि पशु पक्षियों जीव जन्तुओं एवम् क्रूर चोरों, क्रूर तस्करों, पेटार्थी अभक्ष्य भक्षकों, स्वार्थी स्वत्व रक्षकों, निर्दयी निशाचरों, पोच पिशाचों, पामर व्यभिचारियों निरंकुश मद्यपों, रसिक स्नेही सहवास रससनी सामान्य वनिता रमणियों तथा इनके जार नारकी नर पशुओं को सांसारिक विषय रसास्वादन द्वारा सन्मान कर, तथा योग साधन युक्त साधकों समाधि सिद्ध साधुओं, संसार त्यक्त उपासकों, निद्रात्यक्त योगियों, जीवनमुक्त सद् भक्तों को श्रद्धा, विश्वास साहस साधना समाधि का प्रशस्तसुपाठ पढ़ा अमानसिक सुदुर्लभ सुख प्राप्तिद्वारा चित्त समाधान कर अर्थात् योगियों से योग करा कर, भोगियों को भोग भुगा कर, रोगियों का रोग घटा कर, वियोगियों को वियोग बढ़ा कर, तरुण हरिण का मान हरता, वायु को हवा बताता, आंधी को फूँक से उड़ाता, बिजली को पीछे छोड़ता, छलावे को छलता, मनो वेग का अनुकरण करता हुआ, अपनी छबीली छटा दिखाकर लम्बी २ छलांग भर कर रात का जागा हारा भागा थका छुपा कर (चन्द्रमा) अपने छुपर खट में पड़ कर गाढ़ी किरण किकारी लगो ताश

बादलों की देदिप्य सुन्दर चादर में सुखकर मुख छिपा कर सोगया (प्रातः काल हो गया) और सम्राट भुवन भास्कर भरद्वाज दिव्य द्यौलोक रूप आलोक महल से निकल मनोहारिणी किरण रूप सप्त अश्व जुड़े चित्र विचित्र रंगों से रंगे रथ पर सवार हो अग्निष्टोम यज्ञ के अनुष्ठानार्थ दीक्षित होने के लिये उदयाचल रूप ज्योतिष्मती जाजल्वमान वेदी पर विराजमान होने के निमित्त चल दिया।

अभी राजर्षि निर्मोही राजा ने स्वाध्याय समाधि साध कर दो घण्टे विश्राम किया था कि, इतने में प्रातः कालीन बाजे बजे, बन्दी जन विरदावली उच्चारने लगे, ब्रह्म परायण ब्राह्मण उच्च नाद से स्वरसहित वेदध्वनि करने लगे। यथा:—

ओ३म्। प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना, प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोम मुत रुद्रं हुवेम ॥ अर्थ—हम सब लोग प्रातःकाल में उस (अग्नि) पूजनीय प्रकाश स्वरूप (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् (मित्र) सखा (वरुण) वरने योग्य उपास्यदेव (अश्विना) वेद विद्या के अध्यापक तथा उपदेशक (भग) ऐश्वर्यशाली (पूषण) पुष्टि कर्त्ता (बृहस्पति) वेद के रक्षक (सोम) सुखदायक (उत) और (रुद्र) दुष्टों को दण्ड देकर रुलानेवाले न्यायाधीश परमात्मा की (हुवेम) स्तुति करते हैं। इत्यादि।

इस श्रोत्र पावन श्रुति ध्वनि को श्रवण कर पक्षियों के कलरव के साथ समग्र नगर के द्विज, शूद्र, नरनारी, युवा बालक, राजा प्रजा जागे। शौचादि नित्य कृत्य से निवृत्ति होकर ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्योपासन) के उपरान्त देव यज्ञ (अग्निहोत्र) में संलग्न हुए।

अस्तु। निष्काम युवराज कामजीत सर्व श्रेष्ठ काम से विश्राम पा एक मनोभिराम कामदार को साथ ले योगाश्रम के रम्याराम की ओर चले। ऋतुपति पावन बसन्त की पुण्य

प्रभात है इधर ग्राम नगर वन उपवन में परम पुरुष के प्यारे पुत्रों ने "पावकायस्वाहा, पवमानाय स्वाहा" आदि पवित्र मंत्रों द्वारा ऋतु की सामग्री और घृतादि ले मानवी होम का समारम्भ किया है उधर प्रकृति की पुत्रियों (दैवी शक्तियों) द्वारा (वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः) शुक्ल श्रुति के अनुसार दैवी यज्ञ का प्रथम सवन प्रारम्भ हुआ है। इधर होम के धूम से धूसरित उधर प्रकृति पुष्प पांति की सुगन्धित से सुवासित शीतल सुखमय समीर सुगन्धि से आच्छादित हो चल रही है। तमोभूमि से गगन की ओर उठता हुआ धूम ऐसा सुहावना लगता है मानो कस्तूरिया शृंगियों की डार गिरिशृंग पर सुगन्ध की खोज में इधर उधर छलांग भर रही है। पावन पवन के झोंकों से उपवन के पादप झूम रहे हैं मानों पुराने योगी ईश्वर प्रेम में मस्त होकर योग निद्रा से चौंक पड़ते हैं। पर्वत पर से पवित्र पानी प्रपात होकर पहाड़ी के पैरों पर पड़ कर पत्थरों से टकरा कर हर हर जलरव करता हुआ बहता है मानों कोई मस्ताना योगी हरि भक्ति में रंगा हुआ उच्च हर हरहर हर शब्द कहता है। हरे भरे पुष्पित तरुवरों से वायु वेग से जो जलरव करते हुए उज्वल जल पर पुष्प वृष्टि हो रही है। मानों महात्मा गान्धी सरीखे कर्म योगियों के सद् उपदेश पर मुग्ध होकर भारतीय देव मण्डली पुष्प वर्षा कर रही है। वृक्षों पर पक्षियों की डार और पर्वता भूमि पर हरिणों की लंगार स्वच्छन्दता के साथ कलरव करती हुई विचर रही है। मानों जीवनमुक्त संयम सिद्धि योगियों की मण्डली जीवों की मुक्ति का उपदेश कर रही हैं।

योगाश्रम आ पहुँचा। बटुक गण वेदध्वनि में निमग्न भोगियों को संसार त्याग कर योग की ओर आकर्षित कर रहे हैं। वेद-पाठी ब्रह्मचारियों के वेदनाद के साथ दादुर मधुर कलनिनाद कर रहे हैं। मानों योग भ्रष्ट तपस्वी पूर्व संस्कारों के उदय होने

पर प्रेम पूर्वक वेद का स्वाध्याय कर रहे हैं। कुमार धीरे धीरे प्रकृति छटा का रहस्य देखते हुए योगाश्रम के पास जा पहुँचे।

दूसरा अंक

आनन्द भिक्षु के आश्रम में—

राजकुमार कामजीत का प्रवेश।

राजकुमार—योगीराज को प्रणाम करता हूँ।

भिक्षु—कल्याण हो, कैसे आना हुआ। कुशल तो है।

कुमार—योगी महात्माओं के दर्शन और सत्सङ्ग के लिये।

भिक्षु—धन्य है आइये विराजिये यह योगियोंका कुशासन है।

कुमार—प्रणाम करके आसन पर बैठता है।

भिक्षु—राजकुमार का आतिथ्य सम्मान कर। कहिये आपका शुभ नाम क्या है किस प्रजा पालक के सुपुत्र हैं।

कुमार—सेवक का नाम कामजीत है इसके पूज्य जनक का जन्म नाम तो महाराज प्रेम जिज्ञासु था पर साम्प्रत्ति वे निर्मोही के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भिक्षु—मन ही मन में देखो राजा लोग कैसे असंतोषी, अभिमानी तथा स्वार्थी होते हैं कि महाराजाधिराज, सम्राट, अन्नदाता की उपाधि रखते हुए, साधुओं की भी प्रशस्ति आप ही धारण कर बैठे।

प्रकाश में—राजा होकर निर्मोही वीत राग। युवाराजकुमार होकर कामजीत यह दो विरुद्ध गुण अग्नि जल के समान समझ में नहीं आते।

कुमार—जो हो पर हम लोगों का नाम ऐसा ही प्रसिद्ध है।

साधु—कुमार क्या अपना अंगरखा देकर हमारे यहाँ बैठ सक्ते हैं।

कुमार—क्यों नहीं पर यह वस्त्र मेरे पहने हुए हैं।

भिक्षु—कुछ संशय न कीजिये अँगरखा मुझे दीजिये।

कुमार—अँगरखा भिक्षु जी को भेट करता है।

साधु, सेवक को साथ लेकर नगर को जाते हैं।

॥ इति द्वितीयांकः ॥

आनन्द भिक्षु का राजकुमार का वस्त्र फाड़ कर और किसी मृत पशु के रुधिर में रंग कर परीक्षार्थ नगर को जाना।

तीसरा अंक

स्थान आनन्द नगर का राज प्रासाद।

आनन्द भिक्षु-द्वार पाल से, हम कामजीत की परिचारिका से मिलना चाहते हैं।

द्वारपाल—जो आज्ञा महाराज, दासी उपस्थित है।

भिक्षु—दासी से दोहाः-

सुनेकमेरी कामकी, महा निकम्मी बात ॥
काम कुमर को सिंहने, बधा हाय दैवात ॥

दासी०दोहा-मैं नहि बांदी काम की, नहीं काम से काम ॥
नदी नाव का सङ्ग है, पार लगावें राम ॥

भिक्षु—यह परिचारिका बड़ी स्वार्थ साधका है इसको स्वामी के मरने का कुछ शोक नहीं। सत्य है।

दोहा-स्वार्थ सिन्धु संसार है। इसका क्या अपराध।
वह मतलब का यार है। जिस में प्रेम अगाध ॥

प्रकाश में—दासी तुझे राजकुमार का कुछ तो मोह चाहिये पर क्यों हो सच कहा है।

कोई मरे न तेरी हानी। चेरी छोड़ न होगी रानी ॥

विवेकमती—महाराज जिसका समय आजाता है वही जाता है फिर शोक करना अनावश्यक है। यथा।

श्लोक—एके वृक्ष समारूढा, नाना पक्षि विहङ्गमाः।
प्रभाते दिग्दिशं यान्ति, का कस्य प्रति वेदना ॥

अर्थ=एक वृक्ष पर सायङ्काल अनेक पक्षी विश्राम लेते हैं,

प्रातः काल अपनी २ दिशा को उड़जाते हैं, कोई किसी के लिये रोता पीटता नहीं है। ऐसे कामजीत अपना काम पूरा करके चल बसा कभी हम भी चले जावेंगे।

भिक्षु-बांदी से-अच्छा तो कामजीतकी भार्य्याके पास लेचल।

दासी—बहुत अच्छा महाराज देखिये राजकुमार का रम्य हरम्य है यह राजकुमार की पत्नी ज्ञानवती देवी हैं।

भिक्षु—ज्ञानवती से दोहा-

सुनरी कामनि कामकी, काम कला अनुरक्त।
केहरि ने खाये कुमर, तव पति हरि के भक्त॥

ज्ञानवती—दोहा-

एका को जग में जने, बीच हुआ संयोग।
नदी नाव का सङ्ग है, होता अन्त वियोग॥

भिक्षु—स्वगत, यह नव युवती बड़ी कठोर है। इसको पति वियोग की तनिक वेदना नहीं।

प्रकाश में—रानी पति की अशुभ मर्म भेदी वार्ता सुन कर तुम्हारा मन तनिक भी खिन्न नहीं हुआ, यह देख कर हम को बड़ा विस्मय है।

ज्ञानवती—साधु से, शोक सन्ताप अज्ञानियों को होता है ज्ञानियों को नहीं।

किसी कवि ने कहा है।

श्लोक—संसारे वन काष्ठानि, नद्यां वहति संव्यमे।
सयोगेन वियोगेन, का कस्य प्रति वेदना॥

अर्थ—जैसे नदी में बन की लकड़ी इधर उधर से बह कर परस्पर मिल जाती फिर पानी की तरंगो से अलग अलग हो कर बहने लगती है ऐसे ही स्त्री पुरुषों का बीच का क्षणिक संयोग है इसके लिये पश्चात्ताप निरर्थक है।

भिक्षु—दासी से, अच्छा, अब कामजीत की माता के पास ले चल।

बाँदी—बहुत अच्छा महारानी निवृत्तिप्रिया देवी बैठी हैं।

भिक्षु—महारानी से-

सुनरी माता काम की, दारुण दुख मय बात।
कामजीत की देह का, किया सिंह ने घात॥
माता—मेरे घर में दैव वश हुआ कुमर उत्पन्न।
हरि के न्याय विधान में, रहनी सदा प्रसन्न॥

भिक्षु-मनमे-माता तो स्त्री से भी विलक्षण निकली माता के तो शरीरका भाग पुत्र होता है। पुत्रकी पीड़ा साक्षात् अपनी पीड़ा है पर आश्चर्य है कि जननी का अपने अंगे पुत्र का तनिक भी प्रेम नहीं है। प्रकाश-महारानी आप सरीखी धैर्यवती हमने कोई माता नहीं देखी कि पुत्रके वियोग में जिसके चित्त पर तनिक चोट न लगे।

महारानी—साधु जी अज्ञानियों को मोह होता है। ज्ञानी वहीं है जो सुख दुख जीवन मरण में समान रहे। जब पुत्र जी नहीं सक्ता अतः शोक अकार्य है। किसी कवि ने कहा है।

श्लोक-अयाचिते मया गर्भे,दृष्टे ऽस्मिन्नरः कृतः।
अयातिच पुनर्याति का कस्य प्रति वेदना॥

अर्थ—विना मांगे ईश्वर की दया से गर्भ में इस पुत्र ने जन्म धारण किया जो इस संसार में आता है जाता है फिर शोक करना अनावश्यक है।

भिक्षु-बांदी से अच्छा महाराज के दर्शन और करा दो।

दासी-चलिये-महाराज के पास भी ले चलूँ। दूर से महाराज का योगाश्रम दिखा कर बोली कि यहै महाराज का समाधि साधन का आनन्द सदन है वहाँ मुझे जाने की आज्ञा नहीं आप स्वयं चले जावें।

चतुर्थांक

महाराज प्रेमजिज्ञासु प्रसिद्ध निर्मोही राजा का समाधिसद-न में योगी आनन्द भिक्षु का प्रवेश।

राजा–उठ कर प्रणाम कर के विराजिये।

भिक्षु–धर्म, धन, सन्तान, प्रजा की वृद्धि हो।

राजा–कुशल मंगल है।

भिक्षु—और तो सब कुशल है परन्तु।

राजा—परन्तु क्या।

भिक्षु—ठण्डा श्वाँस भर कर।

दोहा—काम कुमार कुलीन के, सुनो पिता निष्काम।
क्रिया सिंहने काम का, खाकर काम तमाम॥

राजा—उसकी इतनी आयु थी सुनो तपोधन धीर।
त्याग योग सुख फिर रहें, तुम्हें पड़ी क्या भीर॥

आप योग साधन कीजिये वा संसार का सुधार। इधर उधर मारे मारे फिरने में कुछ सार नहीं कालबली से बड़े बड़े बलवान देवता, अवतार, वली पैगम्बर सब लाचार हैं। किसी कवि ने मेरे कथन की पुष्टि में कैसा सार वचन कहा है।

श्लोक—मातुलो यस्य गोविन्दः पितुर्यस्य धनुर्धरा।
अभिमन्युस्त्यजः प्राणः, का कस्य प्रति वेदना॥

अर्थ–जिसका मामा श्री कृष्ण और पिता गाण्डीव धनुष धारी अर्जुन हो ऐसा अभिमन्यु भी मरगया। फिर मेरा पुत्र किस गिन्ती में है। और किसकी कहें स्वयं श्रीराम कृष्ण जोई-श्वर के अवतरमानेजाते हैं वेभीमरगये हिरण्याक्ष आदि जोअहंब्र-ह्मास्मि कहते थे वे मरे। ईसामसीह जोखुदाकेखासबेटेबनते थे सूली पर चढ़े। मुहम्मद साहिब जो खुदा के खास महबूब थे वे भी मृत्यु से न बचे तो हम तो बहुत तुच्छ जीव हैं। अब इन झगड़ों को छोड़ कर ऐसा उपाय कीजिये और हम लोग को सिखलाइये जो एक बार मर कर बार बार न मरें।

साधु–धन्य राजन् आप बड़े ज्ञानी, सन्तोषी, तपस्वी तथा निर्मोही हैं। आप तो जीवन मुक्त हो चुके। आपके प्रभाव से

आप के पुत्र, परिवार, दास दासी सब ही ज्ञानी हो गये। मैंने आपके परिवार की परीक्षा करली आपका पुत्र जीवित है हमारे आश्रम पर बैठा है मैंने उसका वस्त्र फाड़ डाला है। नवीन भेजकर कुमार को बुला लीजिये।

राजा—बहुत अच्छा, वस्त्र भेजता हूँ।

राज कुमार का आना।

राज कुमार—पूज्य पिता तथा योगी राज, दोनों गुरु जनों को अभिवादन करता हूँ।

दोनों—आशिर्वाद देते हैं। आयुष्मान् सौम्य, समाधि साध कर जीवन मुक्त बनो।

भिक्षु—महाराज आपके गुरुदेव कौन से तपोधन हैं।

राजा—वीतराग महर्षि पाराशर योगीराज।

भिक्षु—वे तो हमारे भी गुरु हैं, पर हमको यह सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।

राजा—यह परमात्मा-गुरु की कृपा तथा पूर्व संचित कमाई का फल है।

भिक्षु—राजा आप का कल्याण हो अब हम भी गुरु देव के दर्शनार्थ जाते हैं।

साधु का जाना। पटाक्षेप ॥ ओ३म् शम् ॥

शिवशंकरमिश्र, द्वारा, भारत-प्रेस, काशी में मुद्रित।